ISSN 2230-7850 Impact Factor : 4.1625 (UIF) Volume - 6 | Issue - 5 | June - 2016
Indian Streams Research Journal

फणीश्वर नाथ रेणू के साहित्य में नारी की स्थिती का आकलन

संगीता दुर्गा चलवादी

Co – Author Details :
डॉ. एस .एस पांडेय

सारांश :
हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ रेणु दोनों ही कथा साहित्य में नया आयाम प्रस्तुत करने वाले रचनाकार रहे हैं। हिन्दी उपन्यास में प्रेमचंद के आगमन से नए युग का प्रारम्भ हुआ था। साहित्य मानव जीवन से पृथक होकर अपने अस्तित्व का निर्माण नहीं कर सकता और स्त्री मानव जीवन का प्रमुख अंग है। इसीलिए कहा जा सकता है कि स्त्री और साहित्य का शाश्वत सम्बन्ध है। स्त्री किसी भी वर्ग की हो उसकी समस्याएं उन्हें एक ही बिन्दु पर लाकर जोड़ देती है। स्त्री स"माज एक ऐसा समाज है जो वर्ग, नस्ल, राष्ट्र आदि संकुचित सीमाओं के पार जाता है और जहाँ कहीं दमन है, चाहे जिस वर्ग, जिस नस्ल की स्त्री त्रस्त हैवह - स्त्रीत्व का मानचित्र) "उसे अपने परचम के नीचे लेता है।, अनामिका पृ.सं. 15, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 1999 (इसीलिएकहा जा सकता है कि स्त्री और साहित्य का शाश्वत सम्बन्ध है। साहित्य की अन्य विधाओं से ज्यादा उपन्यास में स्त्रीजीवन को विस्तारपूर्वक अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है।-

उपन्यास के प्रारम्भ से ही स्त्री जीवन के विभिन्न पक्षों को लक्षित किया जाने लगा था। इस संदर्भ-में मैनेजर पाण्डे का कहना हैकी पराधीनता के बोध और स्वतन्त्रता की उपन्यास ने अपने उदयकाल से ही स्त्री"- आलोचना की सामाजिकता) "अवश्यकता की ओर संकेत किया है।, पृ.सं. 253, वाणी प्रकाशन,दिल्ली, प्र.सं. 2005 (हिन्दी में उपन्यास का उदय ही समाज में स्त्री कीस्थिति के बोध के साथ हुआ था। परन्तु प्रारम्भिक दौर में स्त्री- दृष्टि पर मुख्यतः -चित्रण में उपन्यासकारों को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई क्योंकि उपन्यासकारों की स्त्री जीवन के उपन्यासकार सुधारवाद सामन्ती प्रवृत्ति हावी थी। इसीलिए अधिकांश , मनोरंजन, उपदेश एवं कल्पनाओं की तर्ज़ पर स्त्रीर प्रेमचंद के आगमन से उपन्यास विधा को परिपक्वता प्राप्त हुई उसी जीवन के प्रश्नों को उठा रहे थे। जिस प्रका-

जीवन का सजीव-प्रकार स्त्री, आदर्श एवं यथार्थ रूप भी प्रेमचन्द के उपन्यासों से उत्कृष्टता प्राप्त कर सका। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में हर वर्ग की स्त्री के जीवन संघर्ष को प्रस्तुत किया है लेकिन ग्रामीण स्त्री के संघर्षों को उन्होंने अधिक मार्मिकता से उठाया है।

घृतकुम्भसमा नारी तप्तागारसमः पुमान। नारी घी का कुआँ है और पुरुष जलता हुआ अंगार। दोनों के संयोग से ज्वाला प्रज्वलित हो उठती है, यानी नारी और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। नारी के बिना पुरुष का कोई अस्तित्व नहीं। पुरुष के अभाव में नारी का कोई मूल्य नहीं। दोनों का सम्बन्ध अभिन्न अखण्ड और अनादि है। आदिकाल से लेकर आज तक का भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि नारी किस प्रकार जीवन के क्षेत्र में पुरुष की अभिन्न सहयोगिनी के रूप में अपने नारीत्व को दीपित करती आयी है। नारी के सहयोग के अभाव में पुरुष ने सदा एकाकीपन अनुभव किया है और जहाँ भी सहयोगिनी के रूप में नारी प्राप्त हुई है वहाँ उसने अभिनव से अभिनव सृष्टि की है। नारी की इसी प्रतिभा से पराजित हो प्रसाद जी की श्रद्धा फूट पडी। 'मैला आंचल के लेखक फणीश्वरनाथ 'रेणु इस प्रकार विशिष्ट उपन्यासकार हैं। लेखक के ही शब्दों में 'मैला आंचल एक आंचलिक उपन्यास है। कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है। इसके एक ओर नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पशिचमी बंगाल। विभिन्न सीमा रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है, जब हम दकिखन में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा रेखा खींच देते हैं। प्रेमचन्द के बाद गाँव की जिंदगी का इतना विस्तार के साथ सूक्ष्म चित्राण नये शिल्प में पहली बार 'रेणु के द्वारा किया गया। फणीश्वरनाथ 'रेणु का परिचय देते हुए उनके दूसरे उपन्यास 'परती-परिकथा के आवरण पृष्ठ पर लिखा है कि 'सोशलिस्ट पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में राजनीतिक कार्य किया, फिर बीमार रहे, 1953 में आरोग्य लाभ के बाद राजनीति को पूर्ण रूप से तिलांजलि देकर लेखन कार्य में प्रवृत्त हुए।

१). फणीश्वरनाथ रेणु

फणीश्वरनाथ रेणु प्रेमचंद के बाद के उपन्यासकार रहे हैं। उनका आविर्भाव उपन्यास के तृतीय चरण में हुआ। इस समय उपन्यासों पर 'व्यक्ति स्वतन्त्रता' की अवधारणा पूरी तरह हावी थी। स्त्री एक व्यक्ति के रूप में पहचानी जाने लगी थी। इस दौर में जिन स्त्रियों को व्यक्ति मानकर 'व्यक्ति स्वतन्त्रता' की बात की जा रही थी, वे स्त्रियाँ रेणु की स्त्रियों से भिन्न थी। उनकी भिन्नता वर्गगत थी। जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों से जिस स्त्री को पाठकों से अवगत कराया वे स्त्रियाँ मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। मध्यवर्ग की स्त्रियों ने चयन और वरण की समस्या से जूझकर समाज में अपना स्थान ग्रहण किया। उसे ही इन उपन्यासकारों ने लक्ष्य किया। परन्तु इनकी दृष्टि में समग्रता का अभाव रहा। इनकी दृष्टि निम्नवर्गीय समाज की स्त्रियों की समस्याओं और इच्छाओं पर नहीं गई मध्यवर्गीय स्त्री पर सिमट कर रह गई जबकि जिस दौर में ये उपन्यासकार रचना कर रहे थे, उस समय भारत की आधी से ज्यादा आबादी गाँवों में बसी थी और गाँवों में स्त्रियों की समस्याएं शहरी स्त्री से अधिक जटिल होती हैं। जटिल इन अर्थों में कि वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं होती और परम्पराओं को ज्यों का त्यों बिना चिंतन के अपना लेती है इसीलिए वे शोषण को अपनी नियति मानकर उसमें पिसती रहती है। इसी कारण अधिकतर ग्रामीण स्त्रियाँ मुक्ति की कामना भी नहीं करती। इसका प्रमुख कारण शिक्षा का अभाव और ज्ञान-विज्ञान से सम्पर्कहीनता है। रेणु ने इस दौर के स्त्री विषयक मतों से भिन्न अपनी स्वतन्त्र स्त्री-दृष्टि का परिचय दिया। उन्होंने मुख्यतः ग्रामीण निम्नवर्गीय स्त्री को अपने उपन्यासों में विशेष स्थान दिया। यही उनका महत्व है और इन्हीं मुद्दों पर रेणु प्रासंगिक भी हैं।

२). प्रेमचंद

कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद

प्रेमचंद स्वतंत्रता के दौर के रचनाकार रहे हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से ही स्वतन्त्रता संग्राम को वाणी दी। प्रेमचंद ने स्त्री-संघर्ष को जो वाणी प्रदान की, उसका प्रभाव यह पड़ा कि स्त्री को देखने और उसकी समस्याओं को समझने का नया ही दृष्टिकोण आगे आने वाले उपन्यासकारों ने अपनाया। प्रेमचंद के बाद सबसे बड़ा परिवर्तन यह आया कि स्त्री को 'व्यक्ति' के रूप में उपन्यास में स्थापित किया गया। समाज अब पहले से चले आ रहे स्त्री-संबंधी नियमों को तोड़कर आगे बढ़ रहा था। स्त्री अपने लिए संबंधों का चयन स्वयं करने लगी थी। जहाँ अब तक स्त्री को सुधरवाद, आदर्शवाद की चादर में लपेटकर पाठकों में सामने प्रस्तुत किया जाता रहा था, वहीं इन उपन्यासों ने स्त्री को लीक से हटकर कदम उठाते हुए प्रस्तुत किया। 'नारी-जागृति' ने स्त्री को जो दृष्टिकोण प्रदान किया उसने उसे समाज, व्यक्ति और स्वतंत्रता के प्रति जागरूक किया जो इन उपन्यासों में प्रतिफलित होता दिखाई देता है। यह दौर मुख्यतः स्त्री को व्यक्ति के रूप में पहचाने जाने और मध्यवर्ग को उपन्यास में स्थापित करने का दौर रहा है। इसीलिए यहाँ मध्यवर्गीय स्त्री की स्वतन्त्रता और मुक्ति की आकांक्षा को प्रकट करने का प्रयास जोर-शोर से किया गया। इस दौर में मध्यवर्ग तेजी से उदित हो रहा था। इसीलिए उपन्यासकारों ने इसे अपनाया। इससे प्रेमचंद की परिपाटी पर लिखे जा रहे ग्रामीण कथ्य प्रधान उपन्यासों की दिशा में अवरोध पैदा हुआ, जिसने उपन्यास में मध्यवर्ग को प्रसारित होने में सहायता प्रदान की। फणीश्वरनाथ रेणु भी इसी दौर के उपन्यासकार रहे हैं। उनकी विशिष्टता यह रही कि उन्होंने अपने युगानुरूप चली आ रही मध्यवर्ग प्रधान प्रवृत्ति को न अपनाकर प्रेमचंद की छूटी हुई परम्परा को एक नए ढंग से पुनर्जीवित किया। उन्होंने स्वतन्त्रता के बाद के गाँवों को प्रस्तुत किया जबकि प्रेमचंद ने स्वतन्त्रता पूर्व या कहें कि स्वतंत्रता-संग्राम के दौर के गाँवों को प्रस्तुत किया था। रेणु ने विकास के दौर में मध्यवर्गीय समाज से निम्नवर्गीय समाज की ओर उपन्यास की धारा को मोड़ा और इसी आधार पर उन्होंने विकास के दौर में मध्यवर्गीय स्त्री के साथ ग्रामीण स्त्री के जीवन को प्रस्तुत किया।

पारम्परिक भारतीय समाज में आधुनिकता के तत्वों एवं गुणों के समावेश, समायोजन एवं आत्मसात्करण की प्रक्रिया को तीव्र करने में 19वीं सदी से ही लेखकों की सक्रिय भूमिका रही है। इस सक्रियता की जो परम्परा स्थापित हुई वह आज तक गतिशील है। प्रायः सभी प्रसिद्ध रचनाकारों ने आधुनिक संस्कृति की धारा के साथ अपने आपको जोड़कर राष्ट्रीयता, मानवीयता, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सामाजिक-वैज्ञानिक मानसिकता जैसे आधुनिक मूल्यों को अपनी रचनाओं में ग्रहण किया। प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ रेणु ने इस परम्परा को आत्मसात करने के साथ-साथ समाज की जड़ों में जाकर जीवन के सर्वांगीण गहन अवलोकन का नया कीर्तिमान स्थापित किया। इसीलिए उनके साहित्य में स्त्री-जीवन का भी सर्वांगीण और सूक्ष्म अवलोकन मिलता है।

दोनों रचनाकारों ने स्त्री सम्बन्धी जिन विषयों को प्रस्तुत किया वे समग्रतः स्त्री-प्रश्न के रूप में सामने आते हैं। 'स्त्री-प्रश्न' को स्पष्ट करते हुए जॉन स्टुअर्ट मिल ने कहा है- "परिवार, मातृत्व और शिशुपालन सहित समस्त सामाजिक गतिविधियों एवं संस्थाओं में स्त्रियों की भूमिका, अन्य सामाजिक, आर्थिक शोषण उत्पीड़न और स्त्री-मुक्ति से जुड़ी सभी समस्याओं का जटिल समुच्च है- स्त्री- प्रश्न।" (स्त्रियों की पराधीनता, पृ.सं.10, राजकमल विश्व क्लासिक, प्र.सं. 2002, पहली आवृत्ति, 2003) आज विमर्शों के दौर में स्त्री प्रश्न स्वयं महिलाएं सशक्त वाणी में उठा रही हैं। जिस समय प्रेमचंद और रेणु अपने उपन्यासों का सृजन कर रहे थे,तब स्त्री समस्याएं और जटिल थी। ग्रामीण स्त्री अपनी स्थिति को नियति मानकर जी रही थी। मध्यगर्वीय स्त्री तो स्वतंत्रता की ओर अग्रसर हो रही थी, लेकिन ग्रामीण स्त्री अब भी अपने खोल

में सिमटी हुई थी। प्रेमचंद का महत्त्व यह है कि अपने पूर्ववर्ती लेखकों से विषयवस्तु लेकर भी वे उसे उसी तरह से प्रस्तुत नहीं करते जैसे उनके पूर्ववर्ती लेखक करते थे। इनसे पहले लेखक सनातन हिंदू आदर्शों के समर्थन में भारतीय समाज में पुरुष वर्चस्व को ही महत्त्व दे रहे थे। यह मूलतः सामन्ती दृष्टि थी, जो स्त्री की पराधीनता को ही उसके जीवन का सबसे बड़ा सत्य मानकर चलती थी। प्रेमचंद ने भारतीय समाज में नारी की व्यापक पराधीनता के सवाल को उठाया था। साहित्य में प्रेमचंद के आगमन से जहाँ उपन्यास विधा को परिपक्वता प्राप्त हुई, वही साहित्य से स्त्री संबंधी सामन्ती दृष्टिकोण की पकड़ भी शिथिल होने लगी थी। प्रेमचंद ने स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष रखा। पारिवारिक स्तर पर उसका शोषण भले ही कम न हुआ हो, परन्तु आर्थिक संघर्ष में वह पुरुष की सहगामी बनी जैसे गोदान की धनिया। जिस समय प्रेमचंद रचना कर रहे थे उस समय देश व्यापी स्वतंत्रता-आंदोलन छिड़ा हुआ था। प्रेमचंद ने स्वाधीनता आन्दोलन को गति देते हुए, इन आन्दोलनों में स्त्री की भूमिका को महत्त्व दिया। प्रेमचंद की सबसे बड़ी विशिष्टता यह थी कि इन्होंने हर वर्ग की स्त्री की समस्या को उठाया। भारतीय स्त्री को पारम्परिक अर्थों में परिभाषित कर उनके शोषण और संघर्ष को अभिव्यक्ति दी।

प्रेमचंद का मानना है कि एक ही स्थान पर त्याग, सेवा और पवित्रता का केन्द्रित होना ही नारी का आदर्श है। वह बिना फल की आशा के त्याग करे। जबकि रेणु ने सीमोन द बोउवार के कथानुसार "औरत को औरत होना सिखाया जाता है"(द सेकंड सेक्स -अनुवाद स्त्री उपेक्षिता-प्रभा खेतान, पृ.सं. 19 हिन्दी पॉकेट बुक्स, नवीन संस्करण, 2002, पहला रिप्रिंट 2004) की तर्ज़ पर स्त्री समुदाय को प्रस्तुत किया। प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ रेणु दोनों ही दो प्रमुख युगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रेमचंद स्वतंत्रता पूर्व स्त्री को सामने लाने के प्रयास में थे,वहीं रेणु स्वातन्त्रयोत्तर समाज के स्त्री की स्थिति को उजागर कर भारतीय समाज के समक्ष प्रश्न खड़ा कर रहे थे। इस संदर्भ में मैनेजेर पाण्डे का कहना है-"प्रेमचंद अपने उपन्यासों में वर्तमान के बोध के आधार पर भारत में लोकतंत्र के भविष्य की सम्भावनाओं के अन्त के साथ और संदेहों की अभिव्यक्ति कर रहे थे। रेणु उन सम्भावनाओं के अंत के साथ और संदेहों को सच होता देख रहे थे |" (आलोचना की सामाजिकता, पृ.सं. 256, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2005) वहीं रामविलास शर्मा ने 'प्रेमचंद की परम्परा और आंचलिकता' शीर्षक लेख में कहा है कि 'प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन को साहित्य में प्रस्तुत तो किया है, परन्तु उनकी अन्दरूनी गाँठों को नहीं खोल पाए जिन्हें रेणु ने खोला। प्रेमचंद ने लोकजीवन का जो आधार साहित्य को दिया रेणु ने उसकी तहों तक पहुँचने का प्रयास किया है।" (मैला आँचल-पुनर्पाठ/पुनर्मूल्यांकन, सं. परमानंद श्रीवास्तव, पृ.सं. 7, अभिव्यक्ति प्रकाशन, सं. 2001) भारत यायावर ने इस अन्तर को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है- "प्रेमचंद और रेणु दोनों के पात्र निम्नवर्गीय हरिजन, किसान, लोहार, बढ़ई, चर्मकार, कर्मकार आदि हैं। दोनों कथाकारों ने साधारण पात्रों की जीवन कथा की रचना की है, पर दोनों के कथा-विन्यास, रचना-दृष्टि और ट्रीटमेंट में बहुत फर्क है। प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों में इन उपेक्षित और उत्पीडित पात्रों का आर्थिक शोषण या उनकी सामन्ती और महाजनी व्यवस्था के फंदे में पड़ी हुई दारुण स्थिति का चित्रण है, जबकि रेणु ने इन सताए हुए शोषित पात्रों की सांस्कृतिक सम्पन्नता, मन की कोमलता और रागात्मकता तथा कलाकारोचित प्रतिभा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।"(रेणु रचनावली, भाग-1, पृ.सं. 17, सं. भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन) 'स्त्री' को केन्द्र में रखकर देखा जाए तो जहाँ प्रेमचंद स्त्री शोषण, उत्पीड़न और उस उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष को उठाते नज़र आते हैं, वहीं रेणु स्त्री-जीवन के संघर्ष के साथ-साथ स्त्री मन की कोमलता, प्रतिभा, सांस्कृतिक सम्पन्नता आदि उसके जीवन के तमाम पहलुओं को टटोलते नजर आते हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु साहित्य में आँचलिकता के उद्घाटन के लिए प्रसिद्ध हैं। आँचलिकता केवल साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं है। वह एक राजनैतिक विचार भी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने विकास की तमाम योजनाएं बनाई,

जिनसे भारत के विकास का मॉडल तैयार किया गया है। पश्चिमी देशों के अनुकरण और इस दौर में उभरते नए मध्यवर्ग के मद्देनज़र विकास की योजनाएँ बना तो ली गई, परन्तु इन योजनाओं से ग्रामीण जन कितना लाभ उठा पा रहा था, इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा था। रेणु ने अपनी रचनाओं के माध्यम से इस स्थिति को प्रस्तुत किया। उन्होंने किसी समस्या या किसी विषय को नहीं उठाया बल्कि उन्होंने भारतीय गाँव को विकास के इस दौर में जिस रूप में उपस्थित है उसे प्रस्तुत कर दिया। इससे उन्होंने सवाल खड़ा किया कि विकास की इस योजना में गाँव कहाँ हैं? साथ ही उन्होंने इस बात पर ध्यान आकर्षित किया कि तेजी से उदित होता मध्यवर्ग जो भारतीय समाज का बहुत छोटा-सा हिस्सा था, क्या वही इतने बड़े तबके का नियामक है? क्या उसी के आधार पर योजनाएँ बनाना ग्रामीण समाज को उपेक्षित करना नहीं है? स्त्री-दृष्टि के संदर्भ में देखा जाए तो रेणु ने यह भी स्पष्ट किया है कि ग्रामीण स्त्री किस प्रकार विकास की इस प्रक्रिया से बाहर हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सामने स्त्री की भूमिका नगण्य होती है। पुरुष समाज में जहाँ मध्यगवर्गीय स्त्रियाँ अपने अस्तित्व को लेकर सजग दिखाई दी वहीं ग्रामीण स्त्री के लिए उसके अस्तित्व का नियामक पुरुष ही रहा। पुरुष समाज द्वारा बनाई गई विकास-योजनाओं में स्त्री की भूमिका और जरूरत को नज़र अंदाज किया गया। रेणु ने आंचलिकता के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से इन प्रश्नों को खड़ा किया है।अतः दोनों उपन्यासकारों ने स्त्री शोषण, उत्पीड़न की अभिव्यक्ति के तरीकों, समाज में स्त्री का स्थान और ग्रामीण स्त्री का सत्य, स्वतन्त्रता प्राप्ति और स्वतन्त्रता के दौर में स्त्री की स्थिति लोक-संस्कृति में स्त्री की भूमिका जैसे विषयों पर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।

३). सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक युग प्रवर्तक कवि हैं। उन्होंने भाषा को निखार और संस्कार देने, उसकी सामर्थ्य को उद्घाटित करने के अतिरिक्त नवीन विचार व भावों की समृद्धि दी। पंत सदा ही अत्यंत सशक्त और ऊर्जावान कवि रहे हैं। सुमित्रानंदन पंत को मुख्यतप्रकृति का कवि माना : सौंदर्य और आध्यात्मिक चेतना के भी कुशल कवि थे।-जाने लगा। लेकिन पंत वास्तव में मानव

सुमित्रानंदन पंत (अंग्रेज़ी: *Sumitranandan Pant*, जन्म: 20 मई 1900 - मृत्यु: 28 दिसंबर, 1977) हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार स्तंभों में से एक हैं। सुमित्रानंदन पंत नये युग के प्रवर्तक के रूप में आधुनिक हिन्दी साहित्य में उदित हुए। सुमित्रानंदन पंत ऐसे साहित्यकारों में गिने जाते हैं, जिनका प्रकृति चित्रण समकालीन कवियों में सबसे बेहतरीन था। आकर्षक व्यक्तित्व के धनी सुमित्रानंदन पंत के बारे में साहित्यकार राजेन्द्र यादव कहते हैं कि 'पंत अंग्रेज़ी के रूमानी कवियों जैसी वेशभूषा में रहकर प्रकृति केन्द्रित साहित्य लिखते थे।' जन्म के महज छह घंटे के भीतर उन्होंने अपनी माँ को खो दिया। पंत लोगों से बहुत जल्द प्रभावित हो जाते थे। पंत ने महात्मा गाँधी और कार्ल मार्क्स से प्रभावित होकर उन पर रचनाएँ लिख डालीं। हिंदी साहित्य के **विलियम वर्ड्सवर्थ** कहे जाने वाले इस कवि नेमहानायक अमिताभ बच्चन को 'अमिताभ' नाम दिया था। पद्मभूषण, ज्ञानपीठ पुरस्कार और साहित्य अकादमी पुरस्कारों से नवाजे जा चुके पंत की रचनाओं में समाज के यथार्थ के साथसाथ प्रकृति और मनुष्य की सत्ता के बीच - टकराव भी होता था। हरिवंश राय 'बच्चन' और श्री अरविंदो के साथ उनकी ज़िंदगी के अच्छे दिन गुजरे। आधी सदी से भी अधिक लंबे उनके रचनाकाल में आधुनिक हिंदी कविता का एक पूरा युग समाया हुआ है।

४). महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा (26 मार्च, 1907 — 11 सितम्बर, 1987) हिन्दी की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्रियों में से हैं। वे हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के प्रमुख स्तम्भों जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और सुमित्रानंदन पन्त के साथ महत्वपूर्ण स्तम्भ मानी जाती हैं। उन्हें आधुनिक मीरा भी कहा गया है।कवि निराला ने उन्हें "हिन्दी के विशाल मन्दिर की सरस्वती" भी कहा है।उन्होंने अध्यापन से अपने कार्यजीवन की शुरूआत की और अन्तिम समय तक वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनी रहीं। उनका बाल-विवाह हुआ परन्तु उन्होंने अविवाहित की भांति जीवन-यापन किया। प्रतिभावान कवयित्री और गद्य लेखिका महादेवी वर्मा साहित्य और संगीत में निपुण होने के साथ साथ कुशल चित्रकार और सृजनात्मक अनुवादक भी थीं। उन्हें हिन्दी साहित्य के सभी महत्त्वपूर्ण पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। गत शताब्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय महिला साहित्यकार के रूप में वे जीवन भर पूजनीय बनी रहीं। वे भारत की 50 सबसे यशस्वी महिलाओं में भी शामिल हैं।

- **हिन्दी साहित्य में नारी के बदलते रूप**

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में ।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में ।

सारा का सारा भारतीय साहित्य नारी के विविध चित्रों से ओतप्रोत है। वास्तव में सत्य यह है कि जिस युग के समाज में नारी का जो स्थान था, उस युग के साहित्य में नारी उसी रूप में चित्रित की गयी है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज की सारी मान्यतायें, मर्यादायें उसके युग के साहित्य में स्वतः उभर उठती हैं। यही कारण है कि आदिकाल से लेकर आज तक साहित्य में चित्रित नारी के विविध रूप, अपने युग की नारी विषयक मान्यताओं के ही प्रतिरूप हैं।

भारतीय इतिहास का प्रारम्भ वैदिक युग से होता है। वैदिक युग भारतीय संस्कृति का उज्ज्वलतम युग था, उस युग में नारी का समाज में आदर था, वह पुरुषों के साथ ही जीवन के क्षेत्र में कन्धों से कन्धा मिलाकर कार्य करती थी। उसे पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे। गार्गी, मैत्रेय, विश्ववारा उस युग की ऐसी नारियाँ हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर ऋषियों का पद प्राप्त किया था।

तलवारों की झनझनाहटों के बीच हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल ने विकास पाया। युद्ध होते-, नारियों का अपहरण होता। राजपूत कुमारियों के सौन्दर्य से न जाने कितने हिन्दू राजवंशों का नाश हुआ। लेकिन स्त्रियों की पति-भक्ति इस काल की विशेषता है। पति का मानापमान स्त्री का अपना मानापमान था। पति के लिए अपने प्राणों पर खेल जाना उसके लिये साधारण सी बात थी। जिसमें उस युग का नारी गौरव, उसका तेज जैसे छलक उठा है। नारी कहती है –

भल्ला हुआ जु मरिया बहिरीया महारा कन्तु ।
लज्जेज तु वयंसिअहु जइ भग्गा घर ऐतु ।।

अर्थात् हे बहिन ! भला हुआ जो मेरा कन्त (पति) मारा गया। यदि वह भागा हुआ घर आता तो मैं अपनी समवयस्काओं से लज्जित होती। परन्तु ऐसे चित्र कम हैं उन्हीं चित्रों का बाहुल्य है, जहाँ नारी ने अपने रूप की आग में राजाओं को झुलसा दिया है।

पृथ्वीराज चौहान ने राजकवि चन्द्र द्वारा रचित ?पृथ्वीराज रासो? में ऐसा ही चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में उभर उठा है, जिस समय गौरी पूजन के लिये गयी हुई पद्मावती पृथ्वीराज को देख उसे अपने हाव-भावों द्वारा मुग्ध कर देती है और जिसके परिणामस्वरूप उसका अपहरण होता है –

संगह सषिय लिय सहस बाल
रूकभिनिय जेम लज्जत भराल ।
पूजिअइ गौरी शंकर अनाथ,
दच्छिनइ अंगकारि लगिअ पाय ।
फिर देषि-देषि पृथ्वीराज राज,
हंस मुद्ध-मुद्द चर पह लाज ।

यह थी वीर-गाथा-काल की नारी-रूप की साक्षात् प्रतिमा, समस्त दुस्साहसों का मूल स्रोत। वीर-गाथा-काल के नारी का यही रूप उभर सका, शेष सब उसके सौन्दर्य की आग में झुलस गये, कवियों को उनमें कोई आकर्षण न दिखाई दिया।

भक्ति-काल का प्रारम्भ निर्गुण सन्तों की वैराग्यपूर्ण उक्तियों द्वारा हुआ। इस काल में आचार की शुद्धता पर विशेष जोर दिया गया; इसलिए सन्तों ने साधना के पथ में नारी को बाधा स्वरूप माना, उसे माया ठगिनी आदि विशेषणों से विभूषित किया। नारी जीवन के उज्ज्वल पक्ष इन सन्तों की दृष्टि से अपरिचित रहे। कबीर की निम्नांकित पंक्तियाँ सन्तों की नारी सम्बन्धी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती हैं-

माया महाठगिनी हम जानी ।
निरगुन फांसि लिये कर डोले, बोलै मधुरी बानी ।
नारी तो हम भी करो, नाना नहीं विचार ।
जब जाना तब परिहरि, नारी बडा विकार ।
नारी की झांई परत, अन्धा होत भुजंग ।
कबिरा तिनकी कौन गति, नित नारी को संग ।।

5). कबीर की भाषा शैली

कबीरदास

कबीर ने नारी के ऐसे चित्र क्यों दिये ? केवल इसीलिये कि उस युग में नारी भोग की वस्तु ही समझी जाती थी, उसके गौरवमय पक्षों को भुला दिया गया था। कबीर सन्त थे, उन्होंने जनता को नारी की वासनात्मक पक्ष की ओर देखने से सचेत किया। वैसे उन्होंने नारी के प्रति घृणा नहीं प्रदर्शित की। पतिव्रता नारियों की उन्होंने प्रशंसा की है और सबसे बडी बात तो यह कि स्वयं को राम की ?बहुरिया? माना है। सती कौ अंग, विरहणी, पतिव्रता आदि रूपों का सम्मान किया।

सूर की राधा प्रणय एवं समर्पण की सौगात है। वह जीवन के समस्त बन्धनों, आकर्षण और सुखों से मुक्त होकर चिरन्तर पुरुष की प्रेमिका बनकर उसको पाने के लिये लालायित हो उठती है। उनके लिये हरि हारिल की लकडी के समान हैं –

अखियाँ हरि दरसन की भूखी ।

सूर की राधा में विश्वभर की प्रेमिकायें मान मनुहार करती हैं। यशोदा में विश्व की माताओं की करुणा, वात्सल्य किसी को प्यार करने के लिये लहर उठती है। सूर ने गोपियों की तन्मयता एवं प्रेमासक्ति में हृदय की रागात्मक अनुभूतियों का सजीव चित्रण प्रस्तुत करके नारी जाति के गौरव को उन्नतिशील बनाया है।

६). तुलसीदास

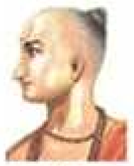
तुलसीदास

तुलसी ने सीता के अतिरिक्त कौशल्या, मन्दोदरी और अनुसूया आदि नारी के आदर्श गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और उन्हें समाज का गौरव सिद्ध किया है किन्तु जहाँ भी नारी उन्हें अपने वास्तविक पद से गिरती हुई दिखाई पडी है वहीं उन्होंने उसकी आघोर निन्दा की है।

डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने लिखा है कि प्रत्येक युग के कलाकार नारी-चित्रण में प्रायः उदार पाये जाते हैं। किन्तु नारी चित्रण में तुलसी बेहद अनुदा हैं, लेकिन उनका यह ख्याल गलत है जिस कवि ने सीता जैसी नारी का चित्रण कर उसे जगत् जननी का पद दिया; वह नारी जाति के प्रति निन्दनीय विचारधारा कदापि नहीं रखता था। फिर तुलसी को तुलसीदास बनाने वाली भी तो एक नारी ही थी – उनकी पत्नी रत्नावली, जिसने धक्के देकर उन्हें राम के वास्तविक महत्त्व से परिचित कराया था। तुलसी रत्नावली के इन शब्दों को कदाचित् क्यों न भूले होंगे –

अस्थि चरम मय देह मम, तासे जैसे प्रीति ।
वैसी जो श्रीराम में, होत न तो भवभीति ।।

ऐसी दशा में तुलसीदास के विषय में यह धारणा रखना पर्याप्त भ्रामक होगा कि उन्होंने नारी जाति की निन्दा की है, उसके प्रति अनुदार रहे हैं। उन्होंने नारी जीवन की वेदना के प्रति अपनी सबसे गहरी सहानुभूति इन पंक्तियों में प्रकट की है –

कत विधि सृजी नारि जग माहि,
पराधीन सपने हूँ सुख नाहीं ।

रीति-कालीन कवियों ने नारी के मातृत्व पक्ष की उपेक्षा करके उसके वासनात्मक पहलू को चमकीले रंगों से रंगा है। बाह्य सौन्दर्य से अभिभूत हो नारी के विकृत चित्र खींचे सर्वत्र नारी के अन्तः सौन्दर्य की अवहेलना की। मातृत्व से देवी होने पर भी उसे सुरति, सुखिन सी देखा। कहीं उसे काम की नटिका, पगडी शभदान एवं नवग्रह की माला बनाया तो कहीं ??कै गई कोटि करेजन के कतरे-कतरे पतरे करिहां की?? के रूप में नश्वर के समान ठहराया। रीति-कालीन नारी में झुलसता रहा। सामाजिक मर्यादा से शून्य नारी अपनी ही चकाचौंध में झुलसती रही।

आधुनिक काल में भारतेन्दु ने नारी को बन्धन से निकालकर नील देवी जैसी क्षत्राणी के रूप में उसके व्यक्तित्व को स्वीकार कर उसे प्राणों की रागिनी एवं दीप्ति की प्रतिभा घोषित किया। गुप्त जी एवं हरिऔध ने युगों-युगों से अभिशप्त नारी के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए अपनी श्रद्धा के सुमन चढाये। उनकी राधा कहती है-

प्यारे जीवें जग हित करें,
गेह आवें न आवें।

गुप्त जी ने लिखा है –

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में, प्रियतम को प्राणों के पण में
हमी भेज देती है रण में, क्षात्र धर्म के नाते ।।

अबला जीवन हाय । तुम्हारी यही कहानी ।

आँचल में है दूध और आँखों में पानी ।।

छायावाद के युग में नारी अस्तित्व केवल भावुकता, सौन्दर्य कल्पना एवं अतीन्द्रिय चित्र प्रस्तुत करने का साधन बना। इससे जीवन के स्पन्दन से वह बहुत दूर जा पडी। फिर भी उसके मातृत्व, सहचरीत्व एवं देवत्व की सदैव अर्चना की गयी और उसे भूल करने में कल्याण दिख पडा-

मुक्त करो नारी को मानव चिर वन्दिनी नारी को।

युग-युग की निर्मम कारा से जननी सखि प्यारी को।

प्रसाद जी की नारी सार्वजनिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। कवि की भौतिक प्रतिभा ने नारी को पुरुष की प्रेरणा एवं शक्ति रूप में चित्रित किया। दिनकर जी ने भी नारी की प्रतिभा की भूरी-भूरी प्रशंसा की।

तुम्हारे अधरों का रस पान,

वासना तट पर पिया अधीर ।

अरी ओ माँ हमने है पिया,

तुम्हारे स्तन का उज्ज्वलक्षीर।।

नारी के आदर्शों को देखकर आज के युग की पुकार है कि हमें रीतिकालीन-युग की वासनात्मक नारी नहीं चाहिए, हमें आदर्श माँ चाहिए। हमें विश्वास है कि आज के जागरूक कवियों द्वारा नारी जीवन के आदर्श रूपों की सृष्टि होगी जो सदियों से पीडत नारी को मुक्त कराने में, उसकी भावना को अभिव्यक्ति करेंगे और तभी मनु की वह युक्ति भी चरितार्थ हो सकेगी – यत्र नार्यस्तु पूज्यते।

- ## हिन्दी भाषा और साहित्य

भाषा वैज्ञानिक हमें शब्द देते हैं, लेकिन साहित्यकार उन शब्दों को चुनकर एक रचना को जन्म देते हैं। भाषा वैज्ञानिक वाक्य संरचना का ज्ञान कराते हैं, लेकिन साहित्यकार वाक्य का अर्थ सुरक्षित रखते हुए रचना में लालित्य पैदा करते हैं।भाषा वैज्ञानिक लेखन में भाषा अनुशासन का पाठ पढाते हैं लेकिन साहित्यकार किसी भी भाषायी अनुशासन से परे शब्दों के जोड-तोड के जादू से पाठक के दिलों में समा जाते हैं।

भाषा और साहित्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भाषा है तो साहित्य है और जब साहित्य होता है तब भाषा स्वतः ही विकासमान होती है। वर्तमान में हिन्दी भाषा दुनिया भर में अपनी पहचान बना चुकी है। इस विकास का एकमात्र आधार है समन्वय। हिन्दी भाषा ने न केवल भारत की अपितु विश्व की अनेक भाषाओं के शब्दों से अपने आपको परिपूर्ण किया और आज भी अनेक शब्दों को अपने अंदर समाहित कर रही है। यदि हम हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो अनेक पहलू निकलकर आएँगे।

हिन्दी भाषा का विकास क्रम – हिन्दी साहित्य की दृष्टि से सम्वत् ७६९ से १३१८ के काल को आदिकाल की संज्ञा दी गयी है। इस काल में संस्कृत, अपभ्रंश (प्राकृत एवं पालि) एवं हिन्दी भाषा, साहित्य की भाषाएँ थीं। संस्कृत उच्च एवं राजवर्ग की, अपभ्रंश धर्म प्रसार की एवं हिन्दी लोक प्रवृत्ति की भाषा बन गयी थी। इस काल में संस्कृत में व्याकरण का अनुशासन चरम पर था इस कारण संस्कृत भाषा का विस्तार ठहर गया और धर्म प्रसार के लिए सरल भाषा का प्रयोग करने की आवश्यकता अनुभव की गयी इस कारण अपभ्रंश या प्राकृत भाषा का निर्माण होने लगा। इस काल में तुर्की, फारसी और अरबी भाषा भारत में आ चुकी थी। भारत में अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ भी विद्यमान थीं अतः

संस्कृत और प्राकृत के बाद हिन्दी भाषा तीव्रता से विस्तार लेने लगी। हिन्दी भाषा चूँकि सभी भाषाओं के मेल से बनी थी इस कारण इसमें शब्दों की प्रचुरता रही और इसी कारण यह भाषा आगे चलकर साहित्य की भाषा बनी।

अंग्रजों के आगमन के बाद सन् १७८० से अंग्रेजी भाषा को स्थापित करने के लिए शिक्षा प्रणाली विकसित की गयी और कॉलेज खुलने प्रारम्भ हुए। अतः कुछ नवीन शब्द अंग्रेजी के भी हिन्दी भाषा में सम्मिलित हो गए। विद्वानों का मत है कि संस्कृत भाषा में जब से व्याकरण की अनिवार्यता लागू की गयी तब से संस्कृत भाषा के विस्तार पर विराम लग गया अतः हिन्दी भाषा के विकास में अन्य भाषाओं एवं व्याकरण का कठोर अनुशासन नहीं होने से वह वर्तमान तक विस्तार लेती चली गयी। स्वतंत्रता के समय हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता मिली। यही कारण है कि आज हिन्दी सम्पूर्ण भारत में बोली और समझी जा रही है। हिन्दी आज भारत में १८ करोड लोगों की मातृभाषा है और ३० करोड लोगों ने द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी को स्थान दिया है। विदेशों में भी अमेरिका, मारिशस, साउथ अ?फ्रीका, यमन, युगाण्डा, सिंगापुर, नेपाल, न्यूजीलेण्ड, जर्मनी आदि देशों में भी भारतीय मूल के निवासियों की भाषा हिन्दी ही है। भारत से गए अप्रवासी भारतीयों ने भी हिन्दी को अपनी भाषा बनाया हुआ है अतः आज हिन्दी दुनिया के प्रत्येक कोने में बोली जाती है। इतना ही नहीं १९९९ के एक सर्वेक्षण के आधार पर हिन्दी विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं में पाँचवें स्थान पर है और १९९८ के एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार हिन्दी भाषा द्वितीय स्थान पर है। हिन्दी में तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों का भी स्थान है तथा अंग्रेजी के शब्दों को भी सम्मिलित करने के बाद इसकी शब्द संख्या का भी निरन्तर विस्तार हो रहा है। अतः आज हिन्दी में सर्वाधिक शब्द संख्या है।

- हिन्दी भाषा के विभिन्न काल – डॉ. नगेन्द्र की पुस्तक ?हिन्दी साहित्य का इतिहास? और डॉ. लक्ष्मी लाल वैरागी की पुस्तक ?हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास? तथा इन्टरनेट पर उपलब्ध जानकारी के अनुसार हिन्दी भाषा के तीन प्रमुख काल माने जाते हैं।
- आदिकाल – डॉ. नगेन्द्र के अनुसार संस्कृत भाषा का काल ईसा पूर्व १५०० से ५०० ई.पू. का है, पालि भाषा का काल ५०० से पहली ईसवी तक, अपभ्रंश काल ५०० से १००० ई. तक और हिन्दी का काल १००० ई. से आगे का काल है। अतः हिन्दी का आदिकाल १००० से १५०० ई. माना जाता है।
- मध्यकाल – १५०० से १८०० ई. तक का काल मध्यकाल माना गया है।
- आधुनिक काल – १८०० से वर्तमान तक का काल आधुनिक काल माना गया है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार ?स्वतंत्रता के समय अन्य देश भी स्वतंत्र हुए और लोकतंत्र तथा साम्यवादी सरकारें समान रूप से निराशाजनक सिद्ध हुईं। व्यक्ति या तो व्यवस्था का पुर्जा हो गया या प्रविधि का। उसका अपना व्यक्तित्व और पहचान खो गयी। इस खोऐ हुए व्यक्तित्व की खोज प्रक्रिया का नाम आधुनिकता है।?

हिन्दी भाषा जब अस्तित्व में आयी तब भारतीय राजनीति का संक्रमण काल था। इस कारण भारतीय साहित्य या हिन्दी साहित्य भी प्रभावित हुआ। राजनैतिक गुलामी के कारण साहित्य पर बहुत प्रभाव पडा। जहाँ साहित्य समाज की वास्तविकता से जनता को अवगत कराता था, उनका मार्गदर्शन करता था, प्रेरित करता था वहीं साहित्य चारणों की परम्परा में चला गया। मुगलकाल में रीति सिद्ध और रीति मुक्त कवियों का उदय हुआ। अंग्रेजों के काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का युग प्रारम्भ हुआ जिसे आधुनिक हिन्दी का काल भी कहा जाता है। भारतेन्दु का काल १८५० से १८८४ का काल माना जाता है और इसके बाद

प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, जयशंकर प्रसाद, फणीश्वर नाथ रेणु, सचिदानन्द वात्स्यायन, महादेवी आदि का काल रहा। इस काल में अंग्रेजों ने अंग्रेजी और ईसाइयत के प्रचार के लिए कॉलेज खोलने प्रारम्भ किए। समाचार पत्रों ने भी अपनी

जगह बनाना प्रारम्भ किया, इस कारण साहित्य पद्य से निकलकर गद्य तक आ गया। अतः भारतेन्दु के काल को आधुनिक काल कहा गया। इसमें निबंध, नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, रेखा चित्र, समालोचना आदि का विकास हुआ।

छायावाद का काल १९१८ से १९३६ का काल माना गया। इस काल में आत्माभिव्यक्त स्वच्छंद काव्य की रचना हुई। श्री मुकुटधर पाण्डे ने कहा कि यह काव्य नहीं है अपितु कविता की छाया मात्र है। इसी नाम को आगे चलकर स्वीकृति मिली और छायावाद के नाम से एक कालखण्ड जाना गया।

छायावाद के बाद प्रगतिवाद आया। डॉ. वैरागी लिखते हैं कि ?एक वाक्य में कहें तो जो चिन्तन के क्षेत्र में माक्र्सवाद है, वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद है, साम्यवाद की दिशा में माक्र्सवाद के सहारे आगे बढना प्रगतिवाद है। प्रगतिवादी साहित्य का लक्ष्य साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करना, शोषित वर्ग की दुरवस्था का वर्णन करना और शोषण तथा शोषित वर्ग के विरुद्ध शोषितों को उत्तेजित करना है।?

स्वतंत्रता के बाद जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिला, तब अनेक हिन्दी भाषा के साहित्यकारों का जन्म हुआ। लेकिन इस काल में प्रगतिवादी साहित्य का बोलबाला रहा। यह वाद सामूहिकतावाद और निश्चयवाद के विरुद्ध खडा था। उनकी दृष्टि में मनुष्य स्वतंत्र था। यहाँ मैं एक घटना के प्रति ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगी जिसे डॉ. नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक में भी लिखा है, कि १८९३ में जब शिकागो में विश्वधर्म संसद को विवेकानन्द ने सम्बोधित किया तब न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून ने लिखा था कि ?विश्व धर्म संसद में विवेकानन्द सर्वश्रेष्ठ

व्यक्ति थे। उनको सुनने के बाद ऐसा लगता था कि उस महान् देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बडी मूर्खता है?। डॉ. नगेन्द्र आगे लिखते हैं कि ?पश्चिम की भौतिकता से चमत्कृत देशवासियों को पहली बार यह अहसास हुआ कि हमारी अपनी परम्परा में भी कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जिन्हें संसार के समक्ष गौरवपूर्ण ढंग से रखा जा सकता है। अतः जब इस देश में प्रगतिवाद के नाम पर धर्मबंधन से मुक्त स्वतंत्रता को साहित्य में स्थान मिल रहा था, उस समय एक वर्ग भारतीय श्रेष्ठ परम्पराओं एवं संस्कृति के सिद्धान्तों को साहित्य में स्थान दे रहा था।

वर्तमान में एक तरफ प्रगतिवाद के नाम पर व्यक्ति की सम्पूर्ण स्वतंत्रता की बात की जा रही है तो दूसरी तरफ भारतीय संस्कृति के अनुरूप परिवारवाद को व्यक्ति से बडा माना जा रहा है। प्रगतिवाद के कारण ही शोषित और शोषक की नवीन परिभाषाएँ दी गयीं और पश्चिम को शोषण रहित, स्वतंत्र समाज का दर्जा दिया गया और भारत को शोषक एवं पुरातनपंथी का दर्जा दिया गया। यहाँ एक बात और विचारणीय है कि लार्ड कॉर्नवालिस ने सन् १७९३ में बंगाल, बिहार, उडीसा में जमींदारी प्रथा लागू कर जमीन को व्यक्तिगत सम्पति के रूप में बदल दिया। इसी के साथ पंचायत व्यवस्था भी समाप्त की गयी और उसकी जगह कचहरी आ गयी। इसी तरह जंगलों पर भी जनजातीय समाज का अधिकार समाप्त कर दिया गया। अतः भारतीय समाज में शोषण की परम्परा अंग्रेजों के काल के बाद प्रारम्भ हुई। आज प्रगतिवादी भारतीय परम्पराओं को शोषण का कारण मानते हैं जबकि भारतीय परम्परा में न तो महिलाओं को पर्दे में रखा जाता था और न ही मैला ढोने की परम्परा थी। ये दोनों ही परम्परा मुगलकाल के बाद आयीं।

अतः वर्तमान साहित्यकार को इतिहास का ज्ञान हुए बिना वह प्रगतिवाद की व्याख्या नहीं कर सकता। विवेकानन्द ने इसीलिए दुनिया को भारतीय संस्कृति का ज्ञान कराया था। आज इसी प्रकार महिला विमर्श और दलित विमर्श के नाम पर एक वर्ग संघर्ष खडा किया जा रहा है। मजेदार बात तो यह है कि महिला विमर्श, पुरुष लिख रहे हैं और दलित विमर्श अदलित लिख रहे हैं। साहित्य समाज के मध्य एकता स्थापित करने की बात करता है, लेकिन आज प्रगतिवाद के नाम पर संघर्ष को स्थापित करने की बात की जा रही है। इसी कारण महिलाओं और दलितों के अधिकारों

को दिलाने के स्थान पर महिलाओं को केवल महिला बनाना और दलितों को भी दलित ही रखते हुए वर्ग संघर्ष को हवा दी जा रही है।

संदर्भ:

1. *हिन्दी उद्भव -, विकास और स्वरूप; अष्टम संस्करण, १९८४, पृष्त १५*

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास (गूगल पुस्तक ; लेखक - श्याम चन्द्र कपूर)

3. History of the Hindi Language (हिन्दी सोसायटी, सिंगापुर)

4. हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास (गूगल पुस्तक ; लेखक - सुमन राजे)

5. हिन्दी भाषा, इतिहास और स्वरूप (गूगल पुस्तक ; लेखक - राजमणि शर्मा)

6. हिंदी कविता की चेतना-यात्रा (शेषनाथ प्रसाद)

7. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खण्ड) (गूगल पुस्तक ; लेखक - गोपीचन्द्र गुप्त)

8. साहित्य-इतिहास लेखन की परंपरा और आचार्य द्विवेदी की आलोचना के लोचन (मधुमती)

9. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा (गूगल पुस्तक ; लेखक - डॉ राम विलास शर्मा)

10. संस्कृत से खड़ीबोली तक का सफर (डॉ. काजल बाजपेयी)

11. रेणु रचनावली, भाग-1, संयायावर भारत ., राजकमल प्रकाशन

12. स्त्रियों की पराधीनता, जॉन स्टुअर्ट मिल, राजकमल विश्व क्लासिक, प्र.सं. 2002, पहली आवृत्ति, 2003
स्त्रीत्व का मानचित्र, अनामिका ,सारांश प्रकाशन, दिल्ली प्रेस, 1999

13. आलोचना की सामाजिकता,मैनेजर पांडेय, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2005